45. तद्नुसार निर्देश का उत्तर दिया जाता है ।

46. तथापि, हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि 2015 की सिविल अपील सं. 14379 में प्रत्यर्थी को तारीख 26 नवम्बर, 2015 के अंतरिम निदेशों के अधीन इससे पूर्व संदत्त की गई रकमों के लिए उनका प्रतिदाय करने का दावा नहीं किया जाएगा ।

तद्नुसार निर्णय किया गया ।

ग्रो.

[2019] 4 उम. नि. प. 58

बासलिंगप्पा

बनाम

मुदीबासप्पा

[2019 की दांडिक अपील सं. 636]

9 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति अशोक भूषण और न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) - धारा 138 और 139 - अपर्याप्त निधियों के कारण चैक का अनादरण - उपधारणा का सिद्धांत - यदि अभियुक्त चैक पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार कर लेता है तो यह उपधारणा की जाएगी कि वह चैक किसी ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए जारी किया गया था ।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 118(क), 138 और 139 - चैक का अनादरण - चैक जारी करने वाले की वित्तीय क्षमता - अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा - यदि साक्ष्य द्वारा सफलतापूर्वक यह साबित कर दिया जाता है कि चैक जारी करते समय परिवादी की वित्तीय क्षमता ऐसी नहीं थी तो उस व्यक्ति द्वारा, जो धारा 138 के अधीन अपराध

कारित करने का अभियुक्त है, उसका प्रयोग अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा के रूप में किया जा सकता है ।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 118(क), 138 और 139 - चैक का अनादरण - परक्राम्य लिखत के बारे में उपधारणा - उपधारणा का खंडन - अधिसंभाव्यता की प्रबलता - चैक के अनादरण से संबंधित मामलों में अभियुक्त उपधारणा का खंडन करने के लिए स्वयं द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का और परिवादी द्वारा अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने की दृष्टि से प्रस्तुत की गई सामग्री का भी अवलंब ले सकता है तथा अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता का अनुमान न केवल पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री से बल्कि उन परिस्थितियों के प्रति निर्देश से भी, जिनका वे अवलंब लेते हैं, लगाया जा सकता है ।

प्रस्तुत मामले में, परिवादी ने अभियुक्त-अपीलार्थी को पर्याप्त निधियों के अभाव के कारण 6,00,000/- रुपए की रकम वाले तारीख 27 फरवरी, 2012 के चैक के अनादरण का कथन करते हुए तारीख 12 मार्च, 2012 को एक सूचना दी थी । इसके पश्चात्, रकम का संदाय न किए जाने पर, परिवादी द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन तारीख 25 अप्रैल, 2012 का एक परिवाद फाइल किया गया था । परिवाद में किया गया अभिकथन यह था कि अभियुक्त ने परिवादी को अत्यावश्यक और पारिवारिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए 6,00,000/- रुपए की धनराशि के लिए दस्ती उधार देने का अनुरोध किया । परिवादी ने अभियुक्त के पक्ष में तारीख 27 फरवरी, 2012 को 6,00,000/- रुपए का दस्ती उधार दिया । अभियुक्त द्वारा 6,00,000/- रुपए के लिए तारीख 27 फरवरी, 2012 का एक चैक दिया गया था किन्तु बैंक द्वारा वह चैक तारीख 1 मार्च, 2012 को "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन के साथ लौटा दिया गया था । तारीख 12 मार्च, 2012 की सूचना के पश्चात्, जिसकी तामील अभियुक्त को तारीख 13 मार्च, 2012 को की गई थी, एक परिवाद फाइल किया गया था । अभि. सा. 1 ने अपनी मुख्य परीक्षा फाइल की और अभियुक्त की ओर से उसकी प्रतिपरीक्षा भी की गई थी । परिवादी ने परिवाद के समर्थन में तारीख 27 फरवरी, 2012 का मूल चैक, तारीख 1 मार्च, 2012 का मूल

चैक वापसी ज्ञापन, तारीख 12 मार्च, 2012 की सूचना की कार्यालय प्रति, तारीख 12 मार्च, 2012 की डाक रसीद, डाक विभाग द्वारा जारी किया गया तारीख 16 अप्रैल, 2012 का पावती पत्र और प्रधान डाकघर को भेजा गया तारीख 11 अप्रैल, 2012 का पत्र फाइल किया । अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में प्रदर्श डी-1 - 2011 के मूल वाद सं. 148 में वादपत्र की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श डी-2 - 2012 के परिवाद मामला सं. 2298 में 2012 के प्राइवेट परिवाद की प्रमाणित प्रति और प्रदर्श डी-3 - रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति फाइल की । विचारण न्यायालय ने ये दो प्रश्न विरचित किए कि (1) क्या परिवादी ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों से परे यह साबित कर दिया है कि अभियुक्त ने विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए परिवादी के पक्ष में प्रगति ग्रामीण बैंक, निजलिंगप्पा कालोनी शाखा, रायचूर का 6,00,000/- रुपए के लिए तारीख 27 फरवरी, 2012 का चैक सं. 839374 जारी किया था और उसका अपर्याप्त निधियों के कारण अनादरण हो गया था और अभियुक्त ने मानित विधिक सूचना के पश्चात् भी उक्त चैक के अंतर्गत आने वाले ऋण का संदाय नहीं किया है और तद्नुसार परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किया है ? और (2) क्या आदेश किया जाए ? विचारण न्यायालय ने साक्ष्य और अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अभियुक्त ऐसी कोई अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने में समर्थ है जिससे विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व की विद्यमानता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है तो अभियोजन असफल हो सकता है । अभियुक्त को तारीख 20 फरवरी, 2015 के निर्णय द्वारा धारा 138 के अधीन आने वाले अपराध से दोषमुक्त किया गया था । परिवादी ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(4) के अधीन एक दांडिक अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया और अभियुक्त को धारा 138 के अधीन आने वाले अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित - जहां चैक पर हस्ताक्षर किए जाने संबंधी तथ्य को अभिस्वीकार कर लिया जाता है वहां यह उपधारणा करनी होगी कि चैक का संबंध विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व से है, तथापि, यह उपधारणा खंडनीय प्रकृति की होती है और तब अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने का भार अभियुक्त पर होता है । (पैरा 18)

जब एक बार चैक का निष्पादन स्वीकार कर लिया जाता है तब अधिनियम की धारा 139 इस उपधारणा को आदिष्ट करती है कि वह चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन के लिए था । धारा 139 के अधीन उपधारणा एक खंडनीय उपधारणा है और अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने का भार अभियुक्त पर है । उपधारणा का खंडन करने के लिए सबूत का मानक अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता है । उपधारणा का खंडन करने के लिए अभियुक्त स्वयं द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का अवलंब लेने के लिए स्वतंत्र है और वह अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने की दृष्टि से परिवादी द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री का भी अवलंब ले सकता है । अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता का अनुमान न केवल पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री से बल्कि उन परिस्थितियों के प्रतिनिर्देश से, जिनका वे अवलंब लेते हैं, लगाया जा सकता है । अभियुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी प्रतिरक्षा के समर्थन में साक्षी के कठघरे में आए, धारा 139 एक साक्ष्यिक भार न कि आग्रही भार अधिरोपित करती है । अभियुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी प्रतिरक्षा का समर्थन करने के लिए साक्षी के कठघरे में हाजिर हो । विधि की इस प्रतिपादना को प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चैक पर किए गए हस्ताक्षर को स्वीकार कर लिए जाने पर धारा 139 के अधीन यह उपधारणा की जाएगी कि वह चैक ऋण या दायित्व के उन्मोचन में जारी किया गया था । जिस प्रश्न की परीक्षा की जानी है वह यह है कि क्या अभियुक्त द्वारा कोई अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा की गई थी । (पैरा 23 और 24)

उच्च न्यायालय, उस साक्ष्य को त्यक्त किए बिना, जो कि प्रतिरक्षा-पक्ष द्वारा पेश किया गया था, यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकता था कि परिवादी की वित्तीय क्षमता के संबंध में विचारण

न्यायालय का निष्कर्ष अनुचित है । अतः, यह समाधान हो गया है कि अभियुक्त ने अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा ली है और विचारण न्यायालय के ये निष्कर्ष कि परिवादी अपनी वित्तीय क्षमता को साबित करने में असफल रहा है, प्रतिरक्षा-पक्ष द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर आधारित हैं । उच्च न्यायालय की ये मताभिव्यक्तियां कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष अनुचित हैं । अतः, उच्च न्यायालय का निर्णय कायम रखे जाने योग्य नहीं है । (पैरा 29)

जब यह उपदर्शित करने के लिए न्यायालय के समक्ष साक्ष्य पेश किया गया था कि परिवादी द्वारा अभियुक्त को 6 लाख रुपए का उधार दिए जाने के अलावा, दो वर्ष के भीतर उसके द्वारा 18 लाख रुपए की रकम उधार दी गई थी और उसकी वित्तीय क्षमता को प्रश्नगत किए जाने पर परिवादी के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह अपनी वित्तीय क्षमता स्पष्ट करता । न्यायालय किसी व्यक्ति पर नकारात्मक साक्ष्य पेश करने के लिए दबाव नहीं डाल सकता । उच्च न्यायालय की इस मताभिव्यक्ति का समर्थन नहीं किया जा सकता है कि विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष अनुचित है कि परिवादी धनराशि उधार देने संबंधी अपनी वित्तीय क्षमता को साबित करने में असफल रहा । उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को किस प्रकार अनुचित ठहराया जा सकता है जब कि वे उस साक्ष्य की विचारणा पर आधारित थे जो प्रतिरक्षा-पक्ष की ओर से पेश किया गया था । (पैरा 28)

परिवादी द्वारा एक ओर आरंभ में परिवाद में और अपनी मुख्य परीक्षा में उस तारीख के संबंध में, जिसको उधार दिया गया था जो कहा गया था और दूसरी ओर प्रतिपरीक्षा में जो कुछ कहा गया था, उनमें ऐसा विरोधाभास है, जिसे संतोषप्रद रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है । उच्च न्यायालय इस तथ्य से अनुचित रूप से प्रभावित हुआ था कि अभियुक्त ने चैक के निष्पादन या विधिक दायित्व से प्रत्याख्यान करने वाली सूचना का उत्तर नहीं दिया था । विचारण न्यायालय के समक्ष भी अपीलार्थी-अभियुक्त ने चैक पर अपने हस्ताक्षर से इनकार नहीं किया है । (पैरा 27)

परिवादी द्वारा फाइल किए गए परिवाद में तथा मुख्य परीक्षा में

परिवादी ने इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि अभियुक्त को कौन-सी तारीख को 6 लाख रुपए का उधार दिया गया था । प्रतिपरीक्षा के दौरान ही उसने नवम्बर, 2011 के रूप में वह तारीख दी । धारा 118(ख) के अधीन तारीख के बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत उस तारीख को बनाई गई या तैयार की गई थी । स्वीकृततः, चैक की तारीख 27 फरवरी, 2012 है, परिवादी द्वारा यह संकेत भी नहीं दिया गया था कि उसे नवम्बर, 2011 में पश्च-दिनांकित चैक दिया गया था, जिस पर 27 फरवरी, 2012 की तारीख पड़ी थी । तारीख 27 फरवरी, 2012 को चैक देना, जो कि तारीख 1 मार्च, 2012 को जमा कराया गया था, परिवादी के पक्षकथन के अनुकूल नहीं है । (पैरा 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 8 एस. सी. सी. 165 : **किशन राव** बनाम **शंकरगौड़ा** ;	4,21
[2010]	(2010) 11 एस. सी. सी. 441 : **रंगप्पा** बनाम **श्री मोहन** ;	18
[2009]	(2009) 10 एस. सी. सी. 636 : **गामिनी बाला कोटेश्वर राव और अन्य** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य, सचिव के माध्यम से** ;	28
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 513 : **कुमार एक्सपोर्ट्स** बनाम **शर्मा कार्पेट्स** ;	17
[2008]	(2008) 4 एस. सी. सी. 54 : **कृष्णा जनार्धन भट्ट** बनाम **दत्तात्रे जी. हेग्ढ़े** ;	15
[2006]	(2006) 6 एस. सी. सी. 39 : **एम. एस. नारायण मेनन** उर्फ **मणि** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य** ;	12
[1999]	(1999) 3 एस. सी. सी. 35 : **भारत बैरल एंड ड्रम मैन्युफैक्चरिंग कंपनी** बनाम **अमीन चन्द प्यारेलाल** ;	11

[1973] [1973] 3 उम. नि. प. 1286 =
(1973) 2 एस. सी. सी. 808 :
काली राम बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** । 10

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2019 की दांडिक अपील सं. 636.

2015 की दांडिक अपील सं. 200042 में कर्नाटक उच्च न्यायालय की कालबुर्गी न्यायपीठ के तारीख 4 जुलाई, 2018 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एस. एन. भट्ट, प्रियंक जैन, डी. पी. चतुर्वेदी और तरुण ठाकुर

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री एन. आर. शर्मा और नरेश कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण ने दिया ।

न्या. भूषण - यह अपील अभियुक्त द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 4 जुलाई, 2018 के उस निर्णय को चुनौती देते हुए फाइल की गई है जिस निर्णय द्वारा परिवादी की ओर से अभियुक्त की दोषमुक्ति के विरुद्ध फाइल की गई दांडिक अपील मंजूर कर ली गई है और अभियुक्त को परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उसे 8,00,000/- रुपए के जुर्माने से, जिसमें व्यतिक्रम करने पर तीन मास का साधारण कारावास भुगतने के लिए दंडादिष्ट किया गया है ।

2. इस अपील का विनिश्चय करने के लिए संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित रूप में हैं :-

2.1. परिवादी ने अभियुक्त-अपीलार्थी को पर्याप्त निधियों के अभाव के कारण 6,00,000/- रुपए की रकम वाले तारीख 27 फरवरी, 2012 के चैक के अनादरण का कथन करते हुए तारीख 12 मार्च, 2012 को एक सूचना दी थी । इसके पश्चात्, रकम का संदाय न किए जाने पर, परिवादी द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1881 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 138 के अधीन तारीख 25

अप्रैल, 2012 का एक परिवाद फाइल किया गया था ।

2.2. परिवाद में किया गया अभिकथन यह था कि अभियुक्त ने परिवादी को अत्यावश्यक और पारिवारिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए 6,00,000/- रुपए की धनराशि के लिए दस्ती उधार देने का अनुरोध किया । परिवादी ने अभियुक्त के पक्ष में तारीख 27 फरवरी, 2012 को 6,00,000/- रुपए का दस्ती उधार दिया । अभियुक्त द्वारा 6,00,000/- रुपए के लिए तारीख 27 फरवरी, 2012 का एक चैक दिया गया था किन्तु बैंक द्वारा वह चैक तारीख 1 मार्च, 2012 को "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन के साथ लौटा दिया गया था ।

2.3. तारीख 12 मार्च, 2012 की सूचना के पश्चात्, जिसकी तामील अभियुक्त को तारीख 13 मार्च, 2012 को की गई थी, एक परिवाद फाइल किया गया था । अभि. सा. 1 ने अपनी मुख्य परीक्षा फाइल की और अभियुक्त की ओर से उसकी प्रतिपरीक्षा भी की गई थी । परिवादी ने परिवाद के समर्थन में तारीख 27 फरवरी, 2012 का मूल चैक, तारीख 1 मार्च, 2012 का मूल चैक वापसी ज्ञापन, तारीख 12 मार्च, 2012 की सूचना की कार्यालय प्रति, तारीख 12 मार्च, 2012 की डाक रसीद, डाक विभाग द्वारा जारी किया गया तारीख 16 अप्रैल, 2012 का पावती पत्र और प्रधान डाकघर को भेजा गया तारीख 11 अप्रैल, 2012 का पत्र फाइल किया । अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में प्रदर्श डी-1 - 2011 के मूल वाद सं. 148 में वादपत्र की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श डी-2 - 2012 के परिवाद मामला सं. 2298 में 2012 के प्राइवेट परिवाद की प्रमाणित प्रति और प्रदर्श डी-3 - रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख की प्रमाणित प्रति फाइल की ।

2.4. विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित दो प्रश्न विरचित किए :-

1. क्या परिवादी ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों से परे यह साबित कर दिया है कि अभियुक्त ने विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए परिवादी के पक्ष में

प्रगति ग्रामीण बैंक, निजलिंगप्पा कालोनी शाखा, रायचूर का 6,00,000/- रुपए के लिए तारीख 27 फरवरी, 2012 का चैक सं. 839374 जारी किया था और उसका अपर्याप्त निधियों के कारण अनादरण हो गया था और अभियुक्त ने मानित विधिक सूचना के पश्चात् भी उक्त चैक के अंतर्गत आने वाले ऋण का संदाय नहीं किया है और तद्नुसार परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किया है?

2. क्या आदेश किया जाए?

2.5. विचारण न्यायालय ने साक्ष्य और अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अभियुक्त ऐसी कोई अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने में समर्थ है जिससे विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व की विद्यमानता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है तो अभियोजन असफल हो सकता है । अभियुक्त को तारीख 20 फरवरी, 2015 के निर्णय द्वारा धारा 138 के अधीन आने वाले अपराध से दोषमुक्त किया गया था । परिवादी ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378(4) के अधीन एक दांडिक अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया और अभियुक्त को धारा 138 के अधीन आने वाले अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री एस. एन. भट्ट ने यह दलील दी है कि अभियुक्त ने धारा 139 के अधीन उपधारणा का खंडन किया है और उसने अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा की, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर विचार करने के पश्चात् स्वीकार कर लिया गया था । उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करके गलती की थी । अभियुक्त ने परिवादी की वित्तीय क्षमता को प्रश्नगत किया है और उच्च न्यायालय ने वित्तीय क्षमता के संबंध में कोई सबूत न होने पर यह मताभिव्यक्ति करके गलती की है कि

विचारण न्यायालय का वह निर्णय अनुचित था । यह दलील दी गई है कि अभियुक्त पर धारा 138 के अधीन सबूत का भार इतना भारी भार नहीं है जितना कि अभियोजन-पक्ष पर अपराध को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने का भार है । यह दलील दी गई कि चूंकि परिवादी कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम का एक सेवानिवृत्त कर्मचारी था, जो कि वर्ष 1997 में सेवानिवृत्त हुआ था और उसने 8,00,000/- रुपए के अपने निवृत्ति फायदें प्राप्त किए थे, इसलिए कोई वित्तीय क्षमता नहीं थी । यह दलील दी गई कि परिवादी ने अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध भी धारा 138 के अधीन मामले फाइल किए हैं । परिवादी ने विक्रय करार के लिए 4,50,000/- रुपए का संदाय भी किया था । परिवादी अभियुक्त द्वारा निष्पादित विक्रय करार का एक साक्षी भी था, जिसमें उसने 15 लाख रुपए की रकम प्रतिफल के रूप में प्राप्त की थी । इस भार का उन्मोचन करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री थी और उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करके गलती की थी ।

4. परिवादी की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा दी गई दलीलों का खंडन करते हुए यह दलील दी की चूंकि अभियुक्त द्वारा चैक पर हस्ताक्षर करना स्वीकार कर लिया गया है इसलिए ठीक ही यह उपधारणा की गई है कि वह चैक किसी ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए दिया गया था । अभियुक्त कोई अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा साबित करने में समर्थ नहीं रहा है और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को ठीक ही दोषसिद्ध किया है । अभियुक्त द्वारा यह पक्षकथन नहीं किया गया था कि परिवादी का आय का कोई अन्य स्रोत नहीं है । परिवादी की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने **किशन राव** बनाम **शंकरगौड़ा**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है ।

5. हमने पक्षकारों के काउन्सेलों के निवेदनों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

6. तथ्यों का सारांश पुनः प्रस्तुत करते हुए, तारीख 27 फरवरी, 2012 का चैक परिवादी द्वारा भुगतान के लिए प्रस्तुत किया गया था,

---

[1] (2018) 8 एस. सी. सी. 165.

जो कि तारीख 1 मार्च, 2012 को लौटा दिया गया था । अभियुक्त द्वारा चैक पर किए गए हस्ताक्षर से इनकार नहीं किया गया है जिसके कारण यह उपधारणा की जाएगी कि वह चैक किसी ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए जारी किया गया था । परिवादी ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए अपना साक्ष्य दिया । उसने मुख्य परीक्षा में यह कथन किया कि 6,00,000/- रुपए का उधार एक दस्ती उधार था और अभियुक्त ने उसके उन्मोचन के लिए तारीख 27 फरवरी, 2012 का चैक दिया था । परिवादी ने, न तो परिवाद में और न ही मुख्य परीक्षा में अभियुक्त को उधार दिए जाने की तारीख का कथन किया है, तथापि, उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि नवम्बर, 2011 मास में अभियुक्त ने 6,00,000/- रुपए का उधार लिया था । उसने प्रतिपरीक्षा में आगे यह कथन किया कि उसने अभियुक्त के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति को उधार नहीं दिया है । उसने बालना गौड़ा नामक व्यक्ति के विरुद्ध धनराशि की वसूली के लिए कोई वाद फाइल किए जाने से इनकार किया है । तथापि, उसने यह स्वीकार किया है कि वह वाद 18 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज सहित वचनपत्र के आधार पर फाइल किया गया था । उसने आगे यह स्वीकार किया कि उसने सिद्देश नामक व्यक्ति के विरुद्ध परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन आपराधिक मामला फाइल किया है जो कि 2012 का आपराधिक मामला सं. 2298 है । जब यह सुझाव दिया गया था कि परिवादी ने अभियुक्त को 25,000/- रुपए उधार दिए थे तब उसने यह कथन किया कि उसे यह स्मरण नहीं है कि अभियुक्त ने उससे 25,000/- रुपए उधार लिए हैं । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उसने मैसर्स श्री लक्ष्मी नरसिंह इंडस्ट्रीज़ के पक्ष में अभियुक्त के पट्टाधृत अधिकारों के अंतरण के लिए किए गए करार पर साक्षी के रूप में हस्ताक्षर किए हैं । इस संबंध में आगे पूछताछ करने पर कि क्या अभियुक्त ने उक्त संव्यवहार से 15 लाख रुपए प्राप्त किए थे, उसने इस बारे में अपनी अनभिज्ञता दर्शाई । यह सुझाव भी दिया गया था कि 25,000/- रुपए का उधार लेते समय एक खाली चैक जारी किया गया था । उसकी प्रतिपरीक्षा में यह सुझाव भी दिया गया था कि उधार दिए जाने की तारीख को उसके पास 6,00,000/- रुपए नहीं थे ।

7. अब हम प्रतिरक्षा-पक्ष द्वारा अभिकथित तथ्यों की परीक्षा करते हैं । यद्यपि, प्रतिपरीक्षा में परिवादी ने इस बात से इनकार किया है कि उसने किसी व्यक्ति के विरुद्ध धारा 138 के अधीन कोई मामला फाइल किया है किन्तु प्रदर्श डी-2 उस परिवाद की प्रमाणित प्रति है जो परिवादी द्वारा श्री सिद्देश के विरुद्ध 1881 के अधिनियम की धारा 138 के अधीन अभियुक्त को दंडित करने के लिए फाइल किया गया है । इसके अतिरिक्त, उस चैक की तारीख भी, जो अभिकथित रूप से श्री सिद्देश द्वारा जारी किया गया था, 27 फरवरी, 2012 थी । प्रदर्श डी-3 तारीख 7 जनवरी, 2010 का विक्रय करार था जिसके द्वारा परिवादी ने बालना गौड़ा को विक्रय प्रतिफल के रूप में 4,50,000/- रुपए का संदाय किया था । अभियुक्त द्वारा मैसर्स श्री लक्ष्मी नरसिंह इंडस्ट्रीज़ को पट्टाधृत अधिकारों का अंतरण करने वाले दस्तावेज़ में परिवादी एक साक्षी था, जिसने उस विलेख पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए थे । अभियुक्त की प्रतिपरीक्षा में उसका पक्षकथन यह था कि उसने पट्टाधृत अधिकारों के अंतरण के आधार पर 15 लाख रुपए प्राप्त किए थे । विचारण न्यायालय ने साक्ष्य की विवेचना करने के पश्चात् पैरा सं. 17 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां कीं :–

> "17. वर्तमान मामले में, अंतर्वलित चैक की रकम 6,00,000/- रुपए है और परिवादी एक सेवानिवृत्त बस कंडक्टर है और वह वर्ष 1997 में सेवानिवृत्त हुआ था और उसने कुल 8,00,000/- रुपए के निवृत्ति संबंधी धनीय फायदे प्राप्त किए और उन्हें परिवादी के खाते में जमा कर दिया गया था और परिवादी द्वारा उसका नकदीकरण करा लिया गया था । यह मत व्यक्त किया गया था कि परिवादी वर्तमान में अपनी आय के स्रोत के बारे में मौन है । उसने चैक में विनिर्दिष्ट रकम उधार देने के संबंध में अपनी हैसियत दर्शाने के लिए कहीं भी इस बारे में विनिर्दिष्ट नहीं किया है कि वह क्या कार्य कर रहा है और कितना कमा रहा है । उसकी कमाई दर्शित करने के लिए एक भी दस्तावेज़ नहीं है और न ही परिवादी ने अभियुक्त को 6,00,000/- रुपए की इतनी भारी रकम उधार देने के संबंध में कोई दस्तावेज़ निष्पादित किया है ।

इसके अलावा, अभियुक्त ने अभि. सा. 1 को यह सुझाव दिया कि अभियुक्त ने अपने पट्टाधृत हित को मैसर्स श्री लक्ष्मी नरसिंह इंडस्ट्रीज़ को अंतरित करके 15,00,000/- रुपए की रकम प्राप्त की है और अभि. सा. 1 द्वारा भी यह स्वीकार किया गया है कि वह उक्त संव्यवहार का साक्षी था । उपर्युक्त बातों से परिवादी द्वारा धारित इसी चैक प्रदर्श पी-1 के बारे में संदेह उत्पन्न होता है और परिवादी द्वारा अपनी कमाई दर्शाने के लिए आपराधिक मामला सं. 2675-2012 में कोई दस्तावेज़ प्रस्तुत नहीं किया गया था और परिवादी ने अभियुक्त को इतनी बड़ी रकम उधार देने से पूर्व कोई दस्तावेज़ निष्पादित नहीं किया था । ऐसी परिस्थिति परिवादी द्वारा यथा-दावाकृत संव्यवहार के संबंध में गंभीर संदेह उत्पन्न करती है । माननीय कर्नाटक उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह स्थापित कर दिया है कि अभियुक्त को साक्षी के कठघरे में आने और उपधारणाओं का खंडन करने की आवश्यकता नहीं है । मेरी यह राय है कि संपूर्ण संव्यवहार संदेहास्पद है और इस परिस्थिति में 6,00,000/- रुपए की रकम उधार दिए जाने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता, जैसा कि परिवादी द्वारा दावा किया गया है । तद्नुसार, प्रश्न सं. 1 का उत्तर नकारात्मक दिया जाता है ।"

8. हमने मामले के तथ्यों और अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य की अवेक्षा की है, हमारे लिए अधिनियम की धारा 139 के अधीन की जाने वाली उपधारणाओं की प्रकृति के संबंध में विधिक सिद्धांतों और उस रीति का उल्लेख करना आवश्यक है जिसमें अभियुक्त द्वारा उसका खंडन किया जा सकता है । हमारे लिए इस न्यायालय के सुसंगत निर्णयों की परीक्षा करना आवश्यक है जिनमें इन पहलुओं पर विचार किया गया था और उन्हें स्पष्ट किया गया था । 1881 के अधिनियम के अध्याय 13 में "साक्ष्य के विशेष उपबंध" शीर्षक है । धारा 118 में परक्राम्य लिखतों के बारे में उपधारणाओं के लिए उपबंध किया गया है । धारा 118 निम्नलिखित रूप में है :-

"**118. परक्राम्य लिखत के बारे में उपधारणाएं** - जब तक कि प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता, निम्नलिखित उपधारणाएं की

जाएंगी :–

(क) **प्रतिफल के विषय में** - यह कि हर एक परक्राम्य लिखत प्रतिफलार्थ रचित या लिखी गई थी और यह कि हर ऐसी लिखत जब प्रतिगृहीत, पृष्ठांकित, परक्रामित या अंतरित हो चुकी हो तब वह प्रतिफलार्थ प्रतिगृहीत, पृष्ठांकित, परक्रामित या अंतरित की गई थी ;

(ख) **तारीख के विषय में** - यह कि ऐसी हर परक्राम्य लिखत जिस पर तारीख पड़ी है, ऐसी तारीख को रचित या लिखी गई थी;

* * *"

9. वह अगला उपबंध जिसकी अवेक्षा करनी आवश्यक है, धारा 139 है, जिसमें धारक के पक्ष में उपधारणा करने का उपबंध किया गया है । धारा 139 में निम्न प्रकार अधिकथित है :–

"**139. धारक के पक्ष में उपधारणा** - जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो, यह उपधारणा की जाएगी कि चैक के धारक ने धारा 138 में निर्दिष्ट प्रकृति का चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए प्राप्त किया है ।"

10. चूंकि परिवादी चैक का धारक था और अभियुक्त द्वारा चैक पर किए गए हस्ताक्षर से इनकार नहीं किया गया है इसलिए यह उपधारणा की जाएगी कि वह चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन के लिए जारी किया गया था । धारा 139 के अधीन उपधारणा एक खंडनीय उपधारणा है । इससे पूर्व कि हम उन निर्णयों के प्रति निर्देश करें, जिनमें धारा 118 और धारा 139 पर विचार किया गया है, किसी अभियुक्त पर सबूत का भार डालने से संबंधित साधारण सिद्धांतों की अवेक्षा करना सुसंगत है, विशेष रूप से ऐसे मामले में जहां अभियुक्त की दोषिता के संबंध में कुछ कानूनी उपधारणा की जानी है । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **काली राम** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में निम्न प्रकार अधिकथित किया गया है :–

---

[1] [1973] 3 उम. नि. प. 1286 = (1973) 2 एस. सी. सी. 808.

"23. .....एक महत्वपूर्ण सिद्धांत, जिसे आपराधिक मामलों के लिए, न्याय के प्रशासन को हमारी पद्धति में सदैव दृष्टि में रखना होता है, यह है कि अभियुक्त के रूप में दोषारोपित व्यक्ति के बारे में यह उपधारणा की जाती है कि वह निर्दोष है जब तक कि अभियोजन द्वारा ऐसे साक्ष्य पेश करके उस उपधारणा का खंडन न कर दिया जाए जिससे यह दर्शित हो जाए कि वह उस अपराध का दोषी है जिसका उस पर आरोप लगाया गया है । अभियुक्त का दोष साबित करने का भार अभियोजन पर है और वह जब तक इस भार से मुक्त नहीं हो जाता तब तक न्यायालय अभियुक्त के दोष का निष्कर्ष अभिलिखित नहीं कर सकते । कुछ ऐसे मामले हैं जिनमें अभियुक्त के दोष की बाबत कानूनी उपधारणाएं उत्पन्न होती हैं किन्तु उन मामलों में भी ऐसे तथ्यों की विद्यमानता साबित करने का भार भी अभियोजन पर है जिनकी उपधारणा करने से पूर्व विद्यमान होना आवश्यक है । यदि एक बार उन तथ्यों के बारे में अभियोजन द्वारा यह दर्शित कर दिया जाए कि वे विद्यमान हैं तो न्यायालय कानूनी उपधारणा कर सकता है और ऐसी दशा में ऐसी उपधारणा का खंडन करना अभियुक्त का कर्तव्य होगा । ऐसे मामलों में भी अभियुक्त के ऊपर भार इतना अधिक नहीं है जितना कि सामान्यतः अभियुक्त के दोष को साबित करने का भार अभियोजन पर है । यदि अभियुक्त की निर्दोषिता से संगत कोई ऐसी सामग्री अभिलेख पर दर्शित कर दी जाए जो युक्तियुक्त रूप से सही हो सकती हो भले ही यह निश्चायक रूप से सही न हो तो भी ऐसी स्थिति में अभियुक्त दोषमुक्ति का हकदार होगा ।"

11. **भारत बैरल एंड ड्रम मैन्युफैक्चरिंग कंपनी** बनाम **अमीन चन्द प्यारेलाल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 118(क) पर विचार किया । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब एक बार वचनपत्र का निष्पादन स्वीकार कर लिया जाता है तब धारा 118(क) के अधीन यह उपधारणा उद्भूत होगी कि यह प्रतिफल

---

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 35.

द्वारा समर्थित है । ऐसी उपधारणा खंडनीय होती है और प्रतिवादी अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करके किसी प्रतिफल के अस्तित्व में न होना साबित कर सकता है । पैरा सं. 12 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया गया है :–

> "12. इसमें इसके ऊपर उल्लिखित विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् जो विधिक स्थिति उत्पन्न होती है वह यह है कि जब एक बार वचनपत्र का निष्पादन स्वीकार कर लिया जाता है तब धारा 118(क) के अधीन यह उपधारणा उद्भूत होगी कि यह प्रतिफल द्वारा समर्थित है । ऐसी उपधारणा खंडनीय होती है और प्रतिवादी अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करके किसी प्रतिफल की अविद्यमानता को साबित कर सकता है । यदि प्रतिवादी के बारे में यह साबित कर दिया जाता है कि उसने यह दर्शित करने वाले सबूत के आरंभिक भार का निर्वहन कर दिया है कि प्रतिफल की विद्यमानता अनधिसंभाव्य या संदेहपूर्ण थी या वह अवैध थी तो भार वादी पर अंतरित हो जाएगा जो कि उसे वास्तव में साबित करने के लिए बाध्य होगा और उसके साबित करने में असफल रहने पर वह परक्राम्य लिखत के आधार पर अनुतोष प्रदान किए जाने के लिए निर्हकित होगा । प्रतिफल की अविद्यमानता को साबित करने का प्रतिवादी का भार या तो प्रत्यक्ष या उन परिस्थितियों के प्रति निर्देश करके, जिनका वह अवलंब लेता है, अधिसंभाव्यता की प्रबलता को लेखबद्ध करके हो सकता है । ऐसी दशा में, वादी विधि के अधीन मामले में पेश किए गए समस्त साक्ष्य का अवलंब लेने का हकदार है जिसके अंतर्गत वादी का साक्ष्य भी है । जहां प्रतिवादी प्रतिफल की अविद्यमानता दर्शित करके सबूत के आरंभिक भार का निर्वहन करने में असफल रहता है वहां वादी सदैव अपने पक्ष में धारा 118(क) के अधीन उद्भूत होने वाली उपधारणा के फायदे का हकदार ठहराया जाएगा । न्यायालय प्रतिवादी पर इस बात के लिए जोर नहीं दे सकता कि वह प्रत्यक्ष साक्ष्य पेश करके प्रतिफल की विद्यमानता को नासाबित करे क्योंकि नकारात्मक साक्ष्य की विद्यमानता न तो संभव है और न

ही अनुध्यात है और यदि वह पेश किया जाता है तो उसे संदेह की दृष्टि से देखा जाना है । प्रतिफल देने से प्रत्याख्यान करने मात्र से प्रकटतः कोई प्रतिरक्षा प्रतीत नहीं होती है । साबित करने का भार वादी पर अंतरित करने का फायदा प्राप्त करने के लिए, जो कुछ अधिसंभाव्य है उसे अभिलेख पर लाया जाना होगा । उपधारणा को नासाबित करने के लिए प्रतिवादी को अभिलेख पर ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों को लाना होता है जिन पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय या तो यह विश्वास कर सकता है कि प्रतिफल विद्यमान नहीं था या उसकी अविद्यमानता इतनी अधिसंभाव्य थी कि कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति, मामले की परिस्थितियों के अधीन, इस अभिवाक् के आधार पर कार्यवाही करेगा कि वह विद्यमान नहीं था ।....."

12. **एम. एस. नारायण मेनन** उर्फ **मणि** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा ने 1881 के अधिनियम की धारा 118(क), धारा 138 और धारा 139 पर विचार किया था । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 118(क) और धारा 139, दोनों के अधीन आने वाली उपधारणाएं खंडनीय प्रकृति की हैं । "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्तियों को स्पष्ट करते हुए, एक पूर्ववर्ती निर्णय के प्रतिनिर्देश करके पैरा सं. 28 में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया था (एस. सी. सी. पृष्ठ 30-31, पैरा 52) :-

"28. इस न्यायालय द्वारा भारत संघ **बनाम** प्रमोद गुप्ता (2005) 12 एस. सी. सी. 1 वाले मामले में इस बात पर कि "उपधारणा कर सकेगा", "उपधारणा करेगा" और "निश्चायक सबूत" अभिव्यक्तियों का प्रभाव क्या होगा, निम्नलिखित निबंधनों में विचार किया गया था -

यह सही है कि विधान-मंडल ने पंजाब भू-राजस्व अधिनियम की धारा 42 में "उपधारणा की जाएगी" और

---

[1] (2006) 6 एस. सी. सी. 39.

"उपधारणा की जा सकेगी" दो भिन्न-भिन्न वाक्यांशों का प्रयोग किया है और इसके अलावा उसमें यद्यपि खान और खनिजों के अधिकार कथित रूप से सरकार में निहित होने के संबंध में ऐसी उपधारणा के खंडन की पद्धति और रीति के लिए और भूस्वामियों द्वारा प्रतिधारित किए जाने के लिए उपधारित भूमियों के संबंध में उसकी अनुपस्थिति के संबंध में उपबंध किए गए हैं, तथापि, इसका अभिप्राय यह नहीं होगा कि "उपधारणा करेगा" शब्द निश्चायक होंगे । "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्तियों को साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 4 में स्पष्ट किया गया है जिसका परिशीलन करने से यह प्रत्यक्ष है कि जब कभी यह निदेश दिया जाता है कि न्यायालय किसी तथ्य की उपधारणा करेगा तब वह ऐसे तथ्य को तब तक साबित समझेगा जब तक इसे नासाबित न कर दिया गया हो । इस प्रकार, उक्त उपबंध के निबंधनानुसार, "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्ति के बारे में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता कि वह "निश्चायक सबूत" अभिव्यक्ति की समानार्थी है ।"

13. यह उल्लेख किया गया था कि "उपधारणा करेगा" अभिव्यक्ति के बारे में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि वह निश्चायक सबूत की समानार्थी है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के अधीन "साबित" और "नासाबित" शब्दों की परिभाषा के प्रतिनिर्देश करते हुए पैरा सं. 30 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया गया था :-

"30. "साबित" या "नासाबित" शब्दों की उक्त परिभाषाओं को उस सिद्धांत को लागू करते हुए जो कि अधिनियम की धारा 118(क) के पीछे है, न्यायालय किसी परक्राम्य लिखत के बारे में तब तक यह उपधारणा करेगा कि वह प्रतिफल के लिए है जब तक कि वह अपने समक्ष वाले मामले पर विचार करने के पश्चात् या तो यह विश्वास नहीं कर लेता कि प्रतिफल विद्यमान नहीं है या यह नहीं समझ लेता कि प्रतिफल की अविद्यमानता इतनी अधिसंभाव्य है कि किसी प्रज्ञावान व्यक्ति को, विशिष्ट मामले की

परिस्थितियों के अधीन, इस कल्पना के आधार पर कार्य करना चाहिए कि प्रतिफल विद्यमान नहीं है । ऐसी उपधारणा का खंडन करने के लिए जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा की जाए । उक्त प्रयोजन के लिए भी, परिवादी की ओर से पेश किए गए साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकेगा ।"

14. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जो कुछ आवश्यक है वह अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करना है, जिसके लिए अभियुक्त की ओर से प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में प्रतिफल की विद्यमानता को नासाबित करना आवश्यक नहीं है और परिवादी की ओर से पेश किए गए साक्ष्य का भी अवलंब लिया जा सकता है । सबूत के मानक पर विचार करते हुए, पैरा सं. 32 में निम्न प्रकार मताभिव्यक्ति की गई थी :-

"32. सबूत का मानक स्पष्टतया अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता है । अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता का अनुमान न केवल अभिलेख पर मौजूद सामग्री से लगाया जा सकता है बल्कि वह उन परिस्थितियों के प्रतिनिर्देश से भी लगाया जा सकता है जिनका वह अवलंब लेता है ।"

15. **कृष्णा जनार्धन भट्ट** बनाम **दत्तात्रे जी. हेग्ड़े**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी अभियुक्त को किसी कानून के अधीन उस पर डाले गए सबूत के भार का निर्वहन करने के लिए स्वयं की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । वह अभिलेख पर पहले से लाई गई सामग्री के आधार पर ही अपने भार का निर्वहन कर सकेगा । पैरा सं. 32 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया गया था :-

"32. किसी अभियुक्त को किसी कानूनी के अधीन उस पर डाले गए सबूत के भार का निर्वहन करने के लिए स्वयं की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । वह अभिलेख पर पहले से लाई गई सामग्री के आधार पर ही अपने भार का निर्वहन कर सकेगा । किसी

---

[1] (2008) 4 एस. सी. सी. 54.

अभियुक्त का मौन रहने का सांविधानिक अधिकार है । किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त की ओर से पेश किए जाने वाले तथा अभियोजन की ओर से पेश किए जाने वाले सबूत का मानक भिन्न-भिन्न होता है ।"

16. इस न्यायालय ने पुनः यह बात दोहराई कि जबकि अभियोजन पक्ष को किसी अभियुक्त की दोषिता समस्त युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करनी चाहिए तथापि, किसी अभियुक्त की ओर से प्रतिरक्षा को साबित करने के लिए सबूत का मानक "अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता" है । पैरा सं. 34 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया गया था :–

"34. इसके अतिरिक्त, जबकि अभियोजन पक्ष को किसी अभियुक्त की दोषिता समस्त युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करनी चाहिए तथापि, किसी अभियुक्त की ओर से प्रतिरक्षा को साबित करने के लिए सबूत का मानक "अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता" है । अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता का अनुमान न केवल पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री से बल्कि उन परिस्थितियों के प्रतिनिर्देश करके भी लगाया जा सकता है, जिनका वह अवलंब लेता है ।"

17. **कुमार एक्सपोर्ट्स** बनाम **शर्मा कार्पेट्स**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस बात की पुनः परीक्षा की कि कब परिवादी यह साबित करने के भार का निर्वहन करता है कि लिखत निष्पादित की गई थी और कब वह भार अंतरित हो जाएगा । पैरा 18 से 20 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया गया है :–

"18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 में "साबित" शब्द की परिभाषा को अधिनियम की धारा 118 और धारा 139 के उपबंधो को लागू करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम की धारा 138 के अधीन किसी विचारण में यह उपधारणा करनी होगी कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत प्रतिफल के लिए की गई थी या लिखी गई थी और जब एक बार परक्राम्य लिखत का निष्पादन या तो साबित

---

[1] (2009) 2 एस. सी. सी. 513.

कर दिया जाता है या स्वीकार कर लिया जाता है तो वह ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए निष्पादित की गई थी । जैसे ही परिवादी यह साबित करने के भार का निर्वहन कर देता है कि लिखत, अर्थात्, कोई टिप्पण अभियुक्त द्वारा निष्पादित किया गया था तो अधिनियम की धारा 118 और धारा 139 के अधीन उपधारणा संबंधी नियम, साबित करने का भार अभियुक्त पर डालने में उसकी सहायता करते हैं । ये उपधारणाएं तब तक जीवित, विद्यमान और बनी रहेंगी तथा उनका अंत तभी होगा जब अभियुक्त द्वारा इसके प्रतिकूल साबित कर दिया जाता है, अर्थात्, चैक प्रतिफल और किसी ऋण या दायित्व के उन्मोचन के लिए जारी नहीं किया गया था । कोई उपधारणा अपने आप में कोई साक्ष्य नहीं होती है बल्कि उस पक्षकार के लिए, जिसके फायदे के लिए वह विद्यमान है, केवल प्रथमदृष्ट्या मामला बनाती है ।

19. अधिनियम की धारा 118 में "जब तक कि प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता" वाक्यांश के प्रयोग और अधिनियम की धारा 139 में "जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो" शब्दों के प्रयोग को साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 में दी गई "उपधारणा कर सकेगा" और "उपधारणा करेगा" परिभाषाओं के साथ पढ़ने पर यह तुरंत स्पष्ट हो जाता है कि दोनों उपबंधो के अधीन की जाने वाली उपधारणाएं खंडनीय हैं । जब कोई उपधारणा खंडनीय होती है तो उससे केवल यह इंगित होता है कि वह पक्षकार जिस पर उपधारित तथ्य के आधार पर साक्ष्य के साथ आगे बढ़ने का कर्तव्य है और जब उस पक्षकार ने ऋजुतापूर्वक और युक्तियुक्त रूप से ऐसा साक्ष्य पेश कर दिया है जिससे यह दर्शित होता है कि वास्तविक तथ्य वह नहीं है जो कि उपधारित किया गया है तो उपधारणा का प्रयोजन समाप्त हो जाता है ।

20. .... अभियुक्त यह साबित करने के लिए कि प्रश्नगत टिप्पण प्रतिफल द्वारा समर्थित नहीं था और ऐसा कोई ऋण या दायित्व नहीं था जिसका उसके द्वारा उन्मोचन किया जाना था, प्रत्यक्ष साक्ष्य पेश कर सकता है । तथापि, न्यायालय के लिए

प्रत्येक मामले में इस बात पर जोर देना आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त को प्रत्यक्ष साक्ष्य पेश करके प्रतिफल और ऋण की अविद्यमानता को नासाबित करना चाहिए क्योकि नकारात्मक साक्ष्य की विद्यमानता न तो संभव है और न ही अनुध्यात की जाती है । इसके साथ-साथ, यह स्पष्ट है कि प्रतिफल देने और ऋण की विद्यमानता के प्रत्याख्यान मात्र से प्रकटतः अभियुक्त का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा । जो कुछ संभावित है उसे अभिलेख पर लाया जाना चाहिए जिससे कि साबित करने का भार परिवादी पर अंतरित किया जा सके । अभियुक्त को, उपधारणाओं को नासाबित करने के लिए ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों को अभिलेख पर लाना चाहिए जिन पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय या तो यह विश्वास कर सके कि प्रतिफल और ऋण विद्यमान नहीं था या उनकी अविद्यमानता इतनी संभावित थी कि कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति, मामले की परिस्थितियों के अधीन इस अभिवाक् पर कार्यवाही करेगा कि वे विद्यमान नहीं थे ..... ।"

18. **रंगप्पा** बनाम **श्री मोहन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने धारा 138 और धारा 139 के उपबंधों पर विस्तारपूर्वक विचार किया । उपर्युक्त मामले में, विचारण न्यायालय ने धारा 138 के अधीन चैक के अनादरण से संबंधित एक मामले में अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया था । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दोषसिद्ध करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय को उलट दिया था । उपर्युक्त मामले में, अभियुक्त ने चैक पर किए गए हस्ताक्षरों को स्वीकार किया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां चैक पर हस्ताक्षर किए जाने संबंधी तथ्य को अभिस्वीकार कर लिया जाता है वहां यह उपधारणा करनी होगी कि चैक का संबंध विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व से है, तथापि, यह उपधारणा खंडनीय प्रकृति की होती है और तब अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने का भार अभियुक्त पर होता है । पैरा सं. 13 में, निम्नलिखित रूप से अधिकथित किया गया है :-

---

[1] (2010) 11 एस. सी. सी. 441.

"13. उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में यह उल्लेख किया है कि विचारण कार्यवाहियों के अनुक्रम में, अभियुक्त ने यह स्वीकार किया था कि आक्षेपित चैक (सं. 0886322, तारीख 8 फरवरी, 2011) पर हस्ताक्षर वास्तव में उसके हैं । जब इस तथ्य को अभिस्वीकार कर लिया जाता है तब अधिनियम की धारा 139 में यह उपधारणा आदिष्ट हो जाती है कि चैक का संबंध विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व से है । यह उपधारणा खंडनीय प्रकृति की होती है और तब कोई अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने का भार अभियुक्त पर होता है । उच्च न्यायालय ने प्रस्तुत तथ्यों के संबंध में यह निष्कर्ष निकाला कि अभियुक्त द्वारा की गई प्रतिरक्षा अधिसंभाव्य नहीं थी ।"

19. इस न्यायालय के विभिन्न अन्य निर्णयों के प्रतिनिर्देश करने के पश्चात् उस मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 139 में आदिष्ट उपधारणा के अंतर्गत वास्तव में विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व की विद्यमानता शामिल नहीं है, जोकि, निस्संदेह, खंडनीय उपधारणा की प्रकृति की है । पैरा सं. 26 में, निम्नलिखित रूप से अधिकथित किया गया था :-

"26. इन उद्धरणों को ध्यान में रखते हुए हम प्रत्यर्थी दावाकर्ता से इस संबंध में सहमत हैं कि अधिनियम की धारा 139 के अधीन आदिष्ट उपधारणा में वास्तव में विधिक रूप से प्रवर्तनीय किसी ऋण या दायित्व का विद्यमान होना शामिल नहीं है । कृष्णा जनार्धन भट्ट [(2008) 4 एस. सी. सी. 54] वाले मामले में की गई अभिकथित मताभिव्यक्तियां उस सीमा तक सही नहीं हो सकती हैं । तथापि, इससे उस मामले में के विनिश्चय की शुद्धता के बारे में किसी प्रकार का कोई संदेह उत्पन्न नहीं होता है चूंकि वह उस मामले में के विनिर्दिष्ट तथ्यों और उसकी परिस्थितियों पर आधारित था । जैसा कि इन उद्धरणों में उल्लेख किया गया है, यह वास्तव में खंडनीय उपधारणा की प्रकृति का है और इसमें अभियुक्त ऐसी प्रतिरक्षा करने के लिए स्वतंत्र है जिसमें विधिक रूप से प्रवर्तनीय किसी ऋण या दायित्व के संबंध में बहस की जा सकती है ।

तथापि, इस संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि ऐसी एक आरंभिक उपधारणा है, जो परिवादी के पक्ष में है ।"

20. इस न्यायालय ने और स्पष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 139 विपरीत भार संबंधी खंड का एक उदाहरण है और प्रतिवादी-अभियुक्त पर विपरीत भार संबंधी खंडों के अर्थान्वयन और निर्वचन को आनुपातिकता की कसौटी से मार्गदर्शित होना चाहिए और प्रतिवादी-अभियुक्त से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह असम्यक् उच्च मानक या सबूत का निर्वहन करे । पैरा सं. 27 और 28 में, निम्नलिखित रूप से अधिकथित किया गया था :–

"27. अधिनियम की धारा 139 विपरीत भार संबंधी खंड का एक ऐसा उदाहरण है, जिसे परक्राम्य लिखतों की विश्वसनीयता में सुधार लाने के विधायी उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए शामिल किया गया है । जबकि अधिनियम की धारा 138 में चैकों के अनादरण के संबंध में ठोस दांडिक उपचार विनिर्दिष्ट किया गया है किन्तु धारा 139 के अधीन खंडनीय उपधारणा एक ऐसी युक्ति है जिससे कि मुकदमेबाजी के अनुक्रम में असम्यक् विलंब को रोका जा सके । तथापि, यह स्मरणीय हैं कि धारा 138 द्वारा दंडनीय बनाए गए अपराध को विनियमनकारी अपराध के रूप में भलीभांति वर्णित किया जा सकता है चूंकि किसी चैक का बाउंस हो जाना व्यापक रूप से एक सिविल प्रकार की त्रुटि है जिसका प्रभाव प्रायिक रूप से वाणिज्यिक संव्यवहारों में अंतर्वलित प्राइवेट पक्षकारों तक सीमित रखा जाता है । ऐसी पृष्ठभूमि में, विपरीत भार संबंधी खंडों के अर्थान्वयन और निर्वचन को आनुपातिकता की कसौटी से मार्गदर्शित होना चाहिए और प्रतिवादी-अभियुक्त से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह असम्यक् उच्च मानक या सबूत का निर्वहन करे ।

28. बाध्यकारी न्यायौचित्यों के अभाव में, विपरीत भार संबंधी खंड प्रायः साक्ष्यिक भार न कि आग्रही भार अधिरोपित करते हैं । इस मत को ध्यान में रखते हुए, यह एक स्थापित स्थिति है कि जब किसी अभियुक्त को धारा 139 के अधीन उपधारणा का खंडन

करना होता है तब ऐसा करने के लिए सबूत का मानक "अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता" होता है । अतः, यदि अभियुक्त ऐसी अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने में समर्थ होता है जिससे किसी विधिक रूप से प्रवर्तनीय ऋण या दायित्व की विद्यमानता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है तो अभियोजन विफल हो सकता है । जैसा कि उद्धरणों में स्पष्ट किया गया है, अभियुक्त ऐसी प्रतिरक्षा करने की दृष्टि से परिवादी द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री का अवलंब ले सकता है और यह कल्पनीय है कि कुछ मामलों में अभियुक्त के लिए अपना साक्ष्य पेश करना आवश्यक नहीं हो सकता है ।"

21. अब हम परिवादी की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा अवलंब लिए गए, अर्थात्, **किशन राव** बनाम **शंकरगौड़ा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय की अवेक्षा कर सकते हैं । इस न्यायालय ने उपर्युक्त मामले में अधिनियम की धारा 139 की परीक्षा की है । उपर्युक्त मामले में, अभियुक्त द्वारा जो एकमात्र प्रतिरक्षा की गई थी वह यह थी कि चैक अपीलार्थी द्वारा चुराया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा उक्त प्रतिरक्षा को नामंजूर कर दिया गया था । पैरा सं. 21 से 23 में निम्नलिखित रूप से अधिकथित किया गया था :-

"21. प्रस्तुत मामले में, विचारण न्यायालय तथा अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि चैक पर अभियुक्त के हस्ताक्षर थे और यह बैंक में प्रस्तुत करने के लिए अपीलार्थी को दिया गया था और धारा 139 के अधीन उपधारणा ठीक ही की गई थी, जिसका खंडन अभियुक्त द्वारा नहीं किया गया था । अभियुक्त ने उपर्युक्त उपधारणा का खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया था । अभियुक्त अपने पक्षकथन का समर्थन करने के लिए साक्षी के कठघरे में भी नहीं आया था । उस सूचना के उत्तर में, जो कि अपीलार्थी द्वारा दी गई थी, अभियुक्त ने यह प्रतिरक्षा ली कि चैक को अपीलार्थी द्वारा चुराया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् उक्त प्रतिरक्षा को नामंजूर कर दिया गया था, जिसके संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा भी कोई प्रतिकूल दृष्टिकोण

नहीं अपनाया गया है ।

22. एक अन्य निर्णय, जिसकी परीक्षा करने की आवश्यकता है, वह रंगप्पा **बनाम** श्री मोहन [(2010) 11 एस. सी. सी. 441] वाला मामला है । इस मामले में, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1881 के अधिनियम की धारा 139 के अधीन उपधारणा की परीक्षा की । इस न्यायालय ने उपर्युक्त मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि यदि अभियुक्त ऐसी कोई अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने में समर्थ हो जाता है जिससे किसी ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह का सृजन होता है तो वह उपधारणा असफल हो सकती है । पैरा 26 और 27 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया गया था :–

> "26. इन उद्धरणों को ध्यान में रखते हुए हम प्रत्यर्थी दावाकर्ता से इस संबंध में सहमत हैं कि अधिनियम की धारा 139 के अधीन आदिष्ट उपधारणा में वास्तव में विधिक रूप से प्रवर्तनीय किसी ऋण या दायित्व का विद्यमान होना शामिल नहीं है । कृष्णा जनार्धन भट्ट [(2008) 4 एस. सी. सी. 54] वाले मामले में की गई अभिकथित मताभिव्यक्तियां उस सीमा तक सही नहीं हो सकती हैं । तथापि, इससे उस मामले में के विनिश्चय की शुद्धता के बारे में किसी प्रकार का कोई संदेह उत्पन्न नहीं होता है चूंकि वह उस मामले में के विनिर्दिष्ट तथ्यों और उसकी परिस्थितियों पर आधारित था । जैसा कि इन उद्धरणों में उल्लेख किया गया है, यह वास्तव में खंडनीय उपधारणा की प्रकृति का है और इसमें अभियुक्त ऐसी प्रतिरक्षा करने के लिए स्वतंत्र है जिसमें विधिक रूप से प्रवर्तनीय किसी ऋण या दायित्व के संबंध में बहस की जा सकती है । तथापि, इस संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि ऐसी एक आरंभिक उपधारणा है, जो परिवादी के पक्ष में है ।
>
> 27. अधिनियम की धारा 139 विपरीत भार संबंधी खंड का एक उदाहरण है जो कि परक्राम्य लिखतों की विश्वसनीयता में सुधार लाने के विधायी उद्देश्य को अग्रसर

करने के लिए शामिल किया गया है । जबकि अधिनियम की धारा 138 में चैकों के अनादरण के संबंध में ठोस दांडिक उपचार विनिर्दिष्ट किया गया है किन्तु धारा 139 के अधीन खंडनीय उपधारणा एक ऐसी युक्ति है जिससे कि मुकदमेबाजी के अनुक्रम में असम्यक् विलंब को रोका जा सके । तथापि, यह स्मरणीय हैं कि धारा 138 द्वारा दंडनीय बनाए गए अपराध को विनियमनकारी अपराध के रूप में भलीभांति वर्णित किया जा सकता है चूंकि किसी चैक का बाउंस हो जाना व्यापक रूप से एक सिविल प्रकार की त्रुटि है जिसका प्रभाव प्रायिक रूप से वाणिज्यिक संव्यवहारों में अंतर्वलित प्राइवेट पक्षकारों तक सीमित रखा जाता है । ऐसी पृष्ठभूमि में, विपरीत भार संबंधी खंडों के अर्थान्वयन और निर्वचन को आनुपातिकता की कसौटी से मार्गदर्शित होना चाहिए और प्रतिवादी-अभियुक्त से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह असम्यक् उच्च मानक या सबूत का निर्वहन करे ।"

23. अभियुक्त द्वारा कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया था । चूंकि सूचना के उत्तर में ली गई इस प्रतिरक्षा को कि चैक को चुराया गया था, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अस्वीकार किया गया है इसलिए हमें उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई आधार प्रतीत नहीं होता है कि अभियुक्त न्यायालय के मन में ऋण या दायित्व की विद्यमानता के संबंध में संदेह का सृजन करने में सफल हुआ है ।"

22. उपर्युक्त मामला एक ऐसा मामला था जिसमें इस न्यायालय ने अभियुक्त द्वारा ली गई प्रतिरक्षा को अधिसंभाव्य नहीं पाया था । एकमात्र यह प्रतिरक्षा ली गई थी कि चैक चुराया गया था और चूंकि उसे विचारण न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा कोई प्रतिकूल राय अभिव्यक्त नहीं की गई थी, इसलिए इस न्यायालय ने दोषसिद्धि को प्रत्यावर्तित करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को उलट दिया था । प्रत्यर्थी उक्त निर्णय का फायदा नहीं ले सकता है, जो कि अपने तथ्यों पर आधारित था ।

23. हमने धारा 118(क) और धारा 139 के संबंध में उपर्युक्त मामलों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विनिश्चयाधार की अवेक्षा की है, अब हम इस न्यायालय द्वारा प्रगणित सिद्धांतों का सार निम्नलिखित रीति में प्रस्तुत करते हैं :-

(i) जब एक बार चैक का निष्पादन स्वीकार कर लिया जाता है तब अधिनियम की धारा 139 इस उपधारणा को आदिष्ट करती है कि वह चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन के लिए था ।

(ii) धारा 139 के अधीन उपधारणा एक खंडनीय उपधारणा है और अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने का भार अभियुक्त पर है । उपधारणा का खंडन करने के लिए सबूत का मानक अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता है ।

(iii) उपधारणा का खंडन करने के लिए अभियुक्त स्वयं द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का अवलंब लेने के लिए स्वतंत्र है और वह अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा करने की दृष्टि से परिवादी द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री का भी अवलंब ले सकता है । अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता का अनुमान न केवल पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री से बल्कि उन परिस्थितियों के प्रतिनिर्देश से, जिनका वे अवलंब लेते हैं, लगाया जा सकता है ।

(iv) अभियुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी प्रतिरक्षा के समर्थन में साक्षी के कठघरे में आए, धारा 139 एक साक्ष्यिक भार न कि आग्रही भार अधिरोपित करती है ।

(v) अभियुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी प्रतिरक्षा का समर्थन करने के लिए साक्षी के कठघरे में हाजिर हो ।

24. ऊपर उल्लिखित विधि की प्रतिपादना को प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चैक पर किए गए हस्ताक्षर को स्वीकार कर लिए जाने पर धारा 139 के अधीन यह उपधारणा की जाएगी कि वह चैक ऋण या दायित्व के उन्मोचन में जारी किया गया था । जिस प्रश्न की परीक्षा की जानी है वह यह है कि क्या

अभियुक्त द्वारा कोई अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा की गई थी । जब अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा में यह विनिर्दिष्ट प्रश्न पूछा गया था कि चैक अभियुक्त द्वारा लिए गए 25,000/- रुपए के उधार के संबंध में जारी किया गया था, तब अभि. सा. 1 ने यह कहा कि उसे याद नहीं है । अभि. सा. 1 ने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि वह वर्ष 1997 में सेवानिवृत्त हुआ और उस तारीख को उसने 8 लाख रुपए का धनीय फायदा प्राप्त किया जिसका परिवादी द्वारा नकदीकरण कराया गया था । यह भी साक्ष्य पर लाया गया था कि वर्ष 2010 में परिवादी ने एक विक्रय करार किया था, जिसके लिए उसने बालना गौड़ा को विक्रय प्रतिफल मद्दे 4,50,000/- रुपए की रकम का संदाय किया था । चूंकि वर्ष 2010 में 4,50,000/- रुपए का संदाय स्वीकार किया गया था और इसके अलावा 50,000/- रुपए के उधार का संदाय किया गया था जिसके संबंध में परिवादी द्वारा 2012 का परिवाद सं. 119 फाइल किया गया था, जिस परिवाद की प्रति प्रदर्श डी. 2 के रूप में भी फाइल की गई थी, इसलिए परिवादी के ऊपर यह भार था कि वह अपनी वित्तीय क्षमता साबित करे । वर्ष 2010-2011 में, परिवादी के अपने कथनानुसार उसने 18 लाख रुपए का संदाय किया था । उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान, जब अभियुक्त को 6 लाख रुपए का संदाय करने संबंधी परिवादी की वित्तीय क्षमता को प्रश्नगत किया गया था, तब परिवादी द्वारा कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया गया था । इस प्रकार, अभिलेख पर विद्यमान साक्ष्य अभियुक्त की ओर से एक अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा है, जिसके द्वारा परिवादी पर अपनी वित्तीय क्षमता और अन्य तथ्यों को साबित करने का भार अंतरित हो गया था ।

25. अभिलेख पर एक अन्य साक्ष्य भी था, अर्थात्, दिसम्बर, 2009 में बालना गौड़ा नामक व्यक्ति द्वारा दिए गए 7 लाख रुपए के उधार की वसूली के लिए परिवादी द्वारा फाइल किए गए 2011 के मूल वाद सं. 148 में वादपत्र की प्रति । इस प्रकार, अभिलेख पर यह उपदर्शित करने के लिए साक्ष्य था कि दिसम्बर, 2009 में उसने विक्रय करार में 7 लाख रुपए दिए, वर्ष 2010 में, उसने विक्रय प्रतिफल मद्दे 4,50,000/- रुपए का संदाय किया और इसके अलावा उसने 50,000/-

रुपए का उधार दिया जिसके संबंध में 2012 में परिवाद फाइल किया गया था और इसके अतिरिक्त नवम्बर, 2011 में उसने 6 लाख रुपए का उधार दिया । अतः, वर्ष 2009 से नवम्बर, 2011 की अवधि के दौरान परिवादी द्वारा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को, जिसमें अभियुक्त भी है, 18 लाख रुपए की रकम दी गई थी, जिसने वित्तीय क्षमता साबित करने का भारी भार उस पर डाला जब अभियुक्त की ओर से इसे प्रश्नगत किया गया था, चूंकि अभियुक्त राज्य परिवहन निगम का एक सेवानिवृत्त कर्मचारी था, जो कि वर्ष 1997 में सेवानिवृत्त हुआ और सेवानिवृत्ति संबंधी कुल फायदे, जिनका नकदीकरण कराया गया था, केवल 8 लाख रुपए थे । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि परिवादी सेवानिवृत्त कर्मचारी है तथापि, अभियुक्त ने यह संकेत भी नहीं दिया है कि पेंशन ही परिवादी के जीवनयापन का एकमात्र माध्यम है । उच्च न्यायालय के निर्णय के पैरा 16 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गई थीं :-

> "16. यद्यपि परिवादी सेवानिवृत्त कर्मचारी है तथापि, अभियुक्त ने यह संकेत भी नहीं दिया कि पेंशन ही परिवादी के जीवनयापन का एकमात्र माध्यम है । इन परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष प्रतिकूल है कि परिवादी उधार देने की अपनी क्षमता के सबूत संबंधी आरंभिक भार का निर्वहन करने में असफल रहा, ।"

26. मामले का एक और पहलू भी है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है । परिवादी द्वारा फाइल किए गए परिवाद में तथा मुख्य परीक्षा में परिवादी ने इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि अभियुक्त को कौनसी तारीख को 6 लाख रुपए का उधार दिया गया था । प्रतिपरीक्षा के दौरान ही उसने नवम्बर, 2011 के रूप में वह तारीख दी । धारा 118(ख) के अधीन तारीख के बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि प्रत्येक परक्राम्य लिखत उस तारीख को बनाई गई या तैयार की गई थी । स्वीकृततः, चैक की तारीख 27 फरवरी, 2012 है, परिवादी द्वारा यह संकेत भी नहीं दिया गया था कि उसे नवम्बर, 2011 में पश्च-दिनांकित चैक दिया गया था, जिस पर 27 फरवरी, 2012 की

तारीख पड़ी थी । तारीख 27 फरवरी, 2012 को चैक देना, जो कि तारीख 1 मार्च, 2012 को जमा कराया गया था, परिवादी के पक्षकथन के अनुकूल नहीं है जब हम परिवादी द्वारा प्रस्तुत किए गए परिवाद का और विशेष रूप से परिवाद के पैरा 1 का पठन करते हैं, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "1. अभियुक्त परिवादी का एक बहुत अच्छा मित्र है । अभियुक्त ने परिवादी से अत्यावश्यक और पारिवारिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए 6,00,000/- रुपए की धनराशि का दस्ती उधार देने का अनुरोध किया और परिवादी ने गहरी दोस्ती के कारण और उन कठिनाइयों को जानते हुए, जो अभियुक्त झेल रहा था, अभियुक्त की वित्तीय परेशानियों को पूरा करने के लिए दस्ती उधार देने के लिए तैयार हो गया और तद्नुसार परिवादी ने अभियुक्त के पक्ष में तारीख 27 फरवरी, 2012 का 6,00,000/- रुपए (छह लाख रुपए) का चैक रूपी दस्ती उधार यह कथन करते हुए दिया कि इसे प्रस्तुत करने पर इसका आदर होगा । किन्तु परिवादी को यह आश्चर्य हुआ कि उसे अपने बैक के माध्यम से संग्रहण के लिए प्रस्तुत करने पर वह चैक बैंक द्वारा "अपर्याप्त निधियां" पृष्ठांकन सहित तारीख 1 मार्च, 2012 को लौटा दिया गया था ।"

27. अतः, परिवादी द्वारा एक ओर आरंभ में परिवाद में और अपनी मुख्य परीक्षा में उस तारीख के संबंध में, जिसको उधार दिया गया था जो कहा गया था और दूसरी ओर प्रतिपरीक्षा में जो कुछ कहा गया था, उनमें ऐसा विरोधाभास है, जिसे संतोषप्रद रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है । उच्च न्यायालय इस तथ्य से अनुचित रूप से प्रभावित हुआ था कि अभियुक्त ने चैक के निष्पादन या विधिक दायित्व से प्रत्याख्यान करने वाली सूचना का उत्तर नहीं दिया था । विचारण न्यायालय के समक्ष भी अपीलार्थी-अभियुक्त ने चैक पर अपने हस्ताक्षर से इनकार नहीं किया है ।

28. हमारा यह मत है कि जब यह उपदर्शित करने के लिए न्यायालय के समक्ष साक्ष्य पेश किया गया था कि परिवादी द्वारा

अभियुक्त को 6 लाख रुपए का उधार दिए जाने के अलावा, दो वर्ष के भीतर उसके द्वारा 18 लाख रुपए की रकम उधार दी गई थी और उसकी वित्तीय क्षमता को प्रश्नगत किए जाने पर परिवादी के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह अपनी वित्तीय क्षमता स्पष्ट करता । न्यायालय किसी व्यक्ति पर नकारात्मक साक्ष्य पेश करने के लिए दबाव नहीं डाल सकता । उच्च न्यायालय की इस मताभिव्यक्ति का समर्थन नहीं किया जा सकता है कि विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष अनुचित है कि परिवादी धनराशि उधार देने संबंधी अपनी वित्तीय क्षमता को साबित करने में असफल रहा । हम यह समझने में असमर्थ हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को किस प्रकार अनुचित ठहराया जा सकता है जब कि वे उस साक्ष्य की विचारणा पर आधारित थे जो प्रतिरक्षा-पक्ष की ओर से पेश किया गया था । इस न्यायालय ने **गामिनी बाला कोटेश्वर राव और अन्य** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य, सचिव के माध्यम से**[1] वाले मामले में "अनुचित" अभिव्यक्ति पर विचार किया था और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि हालांकि उच्च न्यायालय साक्ष्य का और विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है किन्तु दोषमुक्ति वाले निर्णय में केवल तभी हस्तक्षेप किया जा सकता है जब वह निर्णय साक्ष्य के बल के विरुद्ध हो । पैरा सं. 14 में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :-

> "14. हमने दिए गए तर्कों पर विचार किया है और मामले की अत्यंत विस्तारपूर्वक सुनवाई की है । यह सही है, जैसाकि श्री राव द्वारा दलील दी गई है, कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के विरुद्ध किसी अपील में हस्तक्षेप विरलतम और असाधारण परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए । तथापि, यह अब सुस्थापित है कि उच्च न्यायालय साक्ष्य और विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए स्वतंत्र है किन्तु केवल ऐसे मामले में जब विचारण न्यायालय का निर्णय कथित रूप से अनुचित है । "अनुचित" शब्द को, जैसा कि वह विधि के निबंधनानुसार समझा जाता है, इस प्रकार

---

[1] (2009) 10 एस. सी. सी. 636.

परिभाषित किया गया है कि उससे "साक्ष्य के बल के विरुद्ध" अभिप्रेत है । हमें तद्नुसार यह देखना होगा कि क्या विचारण न्यायालय का निर्णय, जो कि उच्च न्यायालय द्वारा अनुचित पाया गया है, वास्तव में ऐसा था ।"

29. उच्च न्यायालय, उस साक्ष्य को त्यक्त किए बिना, जो कि प्रतिरक्षा-पक्ष द्वारा पेश किया गया था, यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकता था कि परिवादी की वित्तीय क्षमता के संबंध में विचारण न्यायालय का निष्कर्ष अनुचित है । अतः, हमारा यह समाधान हो गया है कि अभियुक्त ने अधिसंभाव्य प्रतिरक्षा ली है और विचारण न्यायालय के ये निष्कर्ष कि परिवादी अपनी वित्तीय क्षमता को साबित करने में असफल रहा है, प्रतिरक्षा-पक्ष द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर आधारित हैं । उच्च न्यायालय की ये मताभिव्यक्तियां कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष अनुचित हैं । अतः, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय का निर्णय कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

30. परिणामस्वरूप, अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय का निर्णय प्रत्यावर्तित किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.